LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

गीता परिवार
|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 16: दैवासुरसंपद्विभागयोग

2/2 (श्लोक 5-24), रविवार, 02 मार्च 2025

विवेचक: गीता व्रती जाह्नवी जी देखणे

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/EM8AJQF_xuU

सद्गुणों का चयन- ईश्वर प्राप्ति मार्ग

ईश्वर की असीम अनुकम्पा से एवम् गुरुदेव के आशीर्वाद से आज के विवेचन सत्र (बालकों-बालिकाओं हेतु) का शुभारम्भ सङ्कीर्तन, भगवान श्रीकृष्ण की प्रार्थना एवम् दीप प्रज्वलन के साथ हुआ। तत्पश्चात् श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय (दैवासुरसम्पद्विभागयोग) का विवेचन एवं चिन्तन प्रारम्भ हुआ।

संवादात्मक सत्र होने के नाते बालक-बालिकाओं से समय-समय पर प्रश्न भी पूछे गए। बालकों का उत्साह देखते ही बनता था।

आज सोलहवें अध्याय का उत्तरार्द्ध प्रारम्भ हुआ, जिसके अन्तर्गत श्लोक क्रमाङ्क पाँच से चौबीस तक का विवेचन चिन्तन प्रारम्भ किया गया। अब हम स्तर दो में आ गए हैं, वरिष्ठ हो गए हैं।

प्रश्न- अध्याय बारह का नाम क्या है?
उत्तर- **भक्तियोग।**

प्रश्न- अध्याय बारह में कुल श्लोक सङ्ख्या कितनी है?
उत्तर- **बीस।**

प्रश्न- अध्याय पन्द्रह का क्या नाम है?
उत्तर- **पुरुषोत्तमयोग।**

प्रश्न- अध्याय पन्द्रह में कुल श्लोक सङ्ख्या कितनी है?
उत्तर- **बीस।**

प्रश्न- अध्याय सोलह का क्या नाम है?
उत्तर- **दैवासुरसम्पद्विभागयोग।**

प्रश्न- अध्याय सोलह में कुल श्लोक सङ्ख्या कितनी है?

उत्तर- **चौबीस।**

पिछले विवेचन सत्र में हम सभी छब्बीस दैवीय प्रवृत्तियाँ देख चुके हैं। आज के सत्र में हम सभी श्रीभगवान् द्वारा आसुरी प्रवृत्तियों का विस्तारित विवरण देखेंगे। पिछले सत्र में बालक-बालिकाओं को दैवीय गुणों का अभ्यास करने हेतु प्रेरित किया गया। पिछले विवेचन सत्र में हम सभी ने अन्तिम श्लोक सङ्ख्या चार तक विवेचन-चिन्तन किया-

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च |
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।।

अर्थात्

"हे पृथानन्दन! दम्भ करना, अभिमान करना, क्रोध करना, कठोरता रखना और अविवेक का होना भी - ये सभी आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के लक्षण हैं।"

अब इस सत्र में हम अगले श्लोक अर्थात् श्लोक सङ्ख्या पाँच का विवेचन-चिन्तन प्रारम्भ करते हैं।

16.5

दैवी सम्पद्विमोक्षाय, निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः(स्) सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातोऽसि पाण्डव।।16.5।।

दैवी सम्पत्ति मुक्ति के लिये (और) आसुरी सम्पत्ति बन्धन के लिये मानी गयी है। हे पाण्डव! (तुम) दैवी सम्पत्ति को प्राप्त हुए हो, (इसलिये तुम) शोक (चिन्ता) मत करो।

विवेचन- जब हमें यह समझाया जाता है कि जीव में दैवीय प्रवृत्तियाँ अधिक तथा आसुरी प्रवृत्तियाँ कम या तनिक भी नहीं होनी चाहियें, तब हम यह विचार कर सकते हैं कि ऐसा क्यों है? हमें यह क्यों समझाया जा रहा है? जैसे, मान लीजिए किसी ने हमसे कहा कि एक गिलास भर कर जल ले आओ, तब कदाचित् हमारे मन में यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि यह कार्य हमें क्यों दिया जा रहा है? हमारा मन आनन्द के वशीभूत है। जीवन में समस्त मनुष्य आनन्द चाहते हैं। किसी को चॉकलेट चाहिए, किसी को गाड़ी में भ्रमण करना है, किसी को दूसरों से वार्तालाप करने हेतु तथा गीत आदि श्रवण के लिए मोबाइल चाहिए। अत: मनुष्य का मन सदैव आनन्द ही चाहता है तथा किसी प्रकार की शिक्षा या कार्य उसे बोझ सा प्रतीत होता है, परन्तु यहाँ हमें समझना होगा कि जिन दैवीय गुणों के विषय में श्रीभगवान् वर्णन कर रहे हैं, वे हमें ईश्वर के निकट ले जाने हेतु बेहद सहायक सिद्ध होते हैं।

किसी मनुष्य में इन दैवीय गुणों की उपस्थिति उसे स्वतः ही श्रीभगवान् का प्रिय बना देती है। हमें उनका मित्र बना देती है। दूसरी ओर आसुरी प्रवृत्तियाँ जैसे दम्भ, दर्प आदि की उपस्थिति किसी भी जीवात्मा हेतु नरक के द्वार खोल देती है, अत: हम कह सकते हैं कि दिव्य गुण मोक्ष हेतु अनुकूल हैं तथा आसुरी गुण बन्धन दिलाने हेतु हैं।

जब कभी हमारे बड़े हमें कुछ ज्ञान की बातें बताते हैं तथा कहते हैं कि सदैव अच्छी बातों को ग्रहण करना चाहिए एवं बुरी आदतों का त्याग करना चाहिए, तब निश्चित ही हमारे मन में यह विचार आ सकता है कि ऐसा हम से क्यों बोला जा रहा है? क्या मुझमें कोई दोष है? कोई अवगुण है? ऐसे ही विचार उस समय अर्जुन के मन में भी उत्पन्न हुए, जब श्रीभगवान् आसुरी गुणों का वर्णन अर्जुन के समक्ष कर रहे थे। अत: श्रीभगवान् अर्जुन की इस शङ्का का समाधान करते हुए कहते हैं कि "हे पाण्डुपुत्र! तुम चिन्ता मत करो, क्योंकि तुम दैवीय गुणों से युक्त होकर जन्मे हो।

16.6

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्, दैव आसुर एव च।

दैवो विस्तरशः(फ्) प्रोक्त , आसुरं(म्) पार्थ मे शृणु।।16.6।।

इस लोक में दो तरह के ही प्राणियों की सृष्टि है -- दैवी और आसुरी। दैवी को तो (मैंने) विस्तार से कह दिया, (अब) हे पार्थ! (तुम) मुझसे आसुरी को (विस्तार) से सुनो।

विवेचन- जिस प्रकार किसी व्यञ्जन के निर्माण में उसके कुछ घटक तत्त्व उपयोग किये जाते हैं। जैसे हलवे के निर्माण में घटक तत्त्व रवा, शुद्ध घी, शक्कर, मेवे आदि शामिल होते हैं। वैसे ही सृष्टि में पाये जाने वाले किसी भी प्राणी की देह पाँच महाभूतों से मिल कर निर्मित होती है। ये पाँच महाभूत हैं- पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल, आकाश। ये वैसे ही हैं, जिस प्रकार किसी रासायनिक पदार्थ में उसके घटक तत्त्व उपस्थित होते हैं।

यहाँ श्रीभगवान् के वचनों से स्पष्ट होता है कि उनकी दृष्टि में मनुष्यों द्वारा निर्मित सम्प्रदायों, धर्मों, जाति आदि का कोई महत्त्व नहीं है। महत्व है तो दैवीय प्रवृत्तियों का तथा श्रीभगवान् इन्ही दैवीय एवं आसुरी गुणों के आधार पर जीवों में भेद कर उन्हें उनकी प्रवृत्तियों के अनुसार फल देते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं, "हे पृथापुत्र! इस संसार में सृजित प्राणी दो प्रकार के हैं- दैवीय एवं आसुरी। मैं प्रारम्भ में ही विस्तार से तुम्हें दैवीय गुण बता चुका हूँ। अब मुझसे आसुरी गुणों के विषय में श्रवण करो।

16.7

प्रवृत्तिं(ञ्) च निवृत्तिं(ञ्) च, जना न विदुरासुराः।
न शौचं(न्) नापि चाचारो, न सत्यं(न्) तेषु विद्यते।।16.7।।

आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य किस में प्रवृत होना चाहिये और किससे निवृत्त होना चाहिये (इसको) नहीं जानते और उनमें न तो बाह्य शुद्धि, न श्रेष्ठ आचरण तथा न सत्य-पालन ही होता है।

विवेचन- जो आसुरी प्रवृत्तियों से युक्त हैं, वे नहीं जानते क्या करना चाहिए तथा क्या नहीं करना चाहिए? क्या उचित है?, क्या अनुचित? जैसे हमें सभी की सहायता करना चाहिए। अपने अग्रजों से कैसा व्यवहार करना उचित होगा? अपने अनुजों के समक्ष कैसा आचरण किया जाना चाहिए? आसुरी प्रवृत्ति से युक्त व्यक्ति इस पर तनिक भी विचार नहीं करते। उनके मन में जो भी आता है, वे उसे ही उचित मानते हुए दूसरों से आचरण करते हैं। जैसे दूसरों के प्रति ईर्ष्या, क्रोध, आदि प्रवृत्तियाँ उनमें उपस्थित होती हैं।

उनमें पवित्रता नहीं होती है, अर्थात् वे नित्य प्रति स्नान, ध्यान, भगवत् प्रार्थना आदि जैसे दैवीय गुणों से विरक्त होते हैं। आसुरी प्रकृति से युक्त मनुष्यों में प्रायः आलस्य की अधिकता होती है। न वे उचित आचरण करते हैं एवं न ही उनमें सत्य पाया जाता है। वे किसी के समक्ष अपने विचार रखते हुए सत्य तथा असत्य की ओर ध्यान ही नहीं देते।

16.8

असत्यमप्रतिष्ठं(न्) ते, जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं(ङ्), किमन्यत्कामहैतुकम्।।16.8।।

वे कहा करते हैं कि संसार असत्य, बिना मर्यादा के (और) बिना ईश्वर के अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से पैदा हुआ है। (इसलिये) काम ही इसका कारण है, इसके सिवाय और क्या कारण है? (और कोई कारण हो ही नहीं सकता।)

विवेचन- इस संसार में आसुरी प्रवृत्ति से युक्त व्यक्ति यह विचार करते हैं कि मैं ही सर्वश्रेष्ठ एवं शक्तिशाली हूँ। मैं ही सर्वसम्पन्न हूँ। मैं ही सर्वाधिक धन, सम्पत्ति से युक्त एक परम भोक्ता हूँ। जैसे कोई बालक कक्षा में आते ही गर्व के चलते अपने सहपाठियों को नीचा दिखाना प्रारम्भ कर दे। तब उसका यह कृत्य सर्वथा अनुचित होगा। ईश्वर को यह कदापि अच्छा नहीं लगता कि कोई जीव घमण्ड करे। हमें सदैव, यदि हमारे द्वारा कुछ अनुचित हुआ है, उसकी ईश्वर से क्षमा-याचना करनी चाहिए तथा उनसे यह प्रार्थना करनी चाहिए कि "हे भगवान् जी! मुझसे कोई अनुचित कार्य न हो।" आसुरी प्रवृत्ति से युक्त मनुष्य यह कहते हैं कि यह

जगत मिथ्या है, इसका नियमन किसी ईश्वर द्वारा नहीं होता। उनका कहना है कि यह कामेच्छा से उत्पन्न होता है तथा काम के अतिरिक्त कोई अन्य कारण नहीं है। यह विचार मन में धारण करते हुए वे अपने सम्पूर्ण जीवन में आनन्द ही आनन्द चाहते हैं तथा उस हेतु निरन्तर प्रयासरत रहते हुए अनुचित कृत्यों में संलग्न रहते हैं।

eat drink and be merry, जैसे सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं।
आगे चलकर हम चौदहवें अध्याय में श्रीभगवान् द्वारा वर्णित भोजन के प्रकारों अर्थात् सात्त्विक, राजसिक एवं तामसी प्रवृत्तियों का उल्लेख देखेंगे। आसुरी प्रवृत्ति से युक्त मनुष्य चूँकि ईश्वर में विश्वास नहीं करते, अत: वे पूजा, उपासना, श्रीमद्भगवद्गीता के पाठ आदि पर भी ध्यान नहीं देते।

16.9

एतां(न्) दृष्टिमवष्टभ्य, नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः, क्षयाय जगतोऽहिताः।।16.9।।

इस (पूर्वोक्त) (नास्तिक) दृष्टि का आश्रय लेने वाले जो मनुष्य अपने नित्य स्वरूप को नहीं मानते, जिनकी बुद्धि तुच्छ है, जो उग्र कर्म करने वाले (और) संसार के शत्रु हैं, उन मनुष्यों की सामर्थ्य का उपयोग जगत का नाश करने के लिये ही होता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि "आसुरी प्रकृति से युक्त व्यक्ति, जिन्होंने आत्मज्ञान खो दिया तथा जो बुद्धिहीन हैं, ऐसे निष्कर्षों का अनुगमन करते हैं, जिनके द्वारा वे स्वयं को या तो कष्ट में डाल देते हैं या नष्ट कर देते हैं। वे कदापि स्वयं के आध्यात्मिक उन्नयन पर विचार ही नहीं करते तथा धर्म विरुद्ध कार्यों को करते हुए निरन्तर अधोगति की ओर अग्रसर होते रहते हैं। वे ऐसे अनुपयोगी एवं भयावह कार्यों में प्रवृत्त होते हैं जो संसार का विनाश करने हेतु होता है।"

16.10

काममाश्रित्य दुष्पूरं(न्), दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्, प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।16.10।।

कभी पूरी न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर दम्भ, अभिमान और मद में चूर रहने वाले (तथा) अपवित्र व्रत धारण करने वाले मनुष्य मोह के कारण दुराग्रहों को धारण करके (संसार में) विचरते रहते हैं।

विवेचन- अपनी कामनाओं का भण्डार मन में लिए ऐसे व्यक्ति सदैव उन इच्छाओं के वशीभूत होकर आचरण करते हैं। जैसे किसी बालक के निकट एक चॉकलेट होने पर वह एक से अधिक चॉकलेटों की इच्छा रखता है तथा यदि उसकी वह इच्छा पूर्ण भी हो जाती है, फिर भी उसकी इच्छाएँ यहीं समाप्त नहीं होती तथा इसके बाद वह चॉकलेट के पूर्ण डिब्बे की कामना करता है। जैसे-जैसे मनुष्य की आयु में वृद्धि होती जाती है, उसकी इच्छाएँ भी शनैः-शनै: बढ़ती जाती हैं। कभी न सन्तुष्ट होने वाले काम का आश्रय लेकर तथा गर्व के मद एवं मिथ्या प्रतिष्ठा में डूबे हुए आसुरी लोग इस प्रकार मोहग्रस्त हो, सदैव क्षणभङ्गुर वस्तुओं के द्वारा अपवित्र कर्म का व्रत लिए रहते हैं।

16.11

चिन्तामपरिमेयां(ञ्) च, प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा, एतावदिति निश्चिताः।।16.11।।

(वे) मृत्यु पर्यन्त रहने वाली अपार चिन्ताओं का आश्रय लेने वाले, पदार्थों का संग्रह और उनका भोग करने में ही लगे रहने वाले और 'जो कुछ है, वह इतना ही है' - ऐसा निश्चय करने वाले होते हैं।

विवेचन- आसुरी प्रवृत्ति से युक्त मनुष्यों का विश्वास है कि इन्द्रियों की तुष्टि ही मानव सभ्यता की मूल आवश्यकता है तथा इस हेतु वे जीवनपर्यन्त चिन्तित रहते हैं। ऐसा नहीं है कि जीवन में चिन्ता करनी ही नहीं चाहिए। जीवन में, अपने व्यवसाय में

सफलता एवं उन्नति हेतु धैर्य से पूर्ण सन्तुलित चिन्तन अत्यावश्यक है। चिन्ता भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। उदाहरण के लिए जब कोई बालक अपनी कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करना चाहता है तब उसके द्वारा की गई चिन्ता, जिसमें उस बालक का मन-मस्तिष्क स्थिर है, पूर्णत: उपयुक्त है, परन्तु जब किसी बालक द्वारा परिश्रम के बिना ही निरन्तर चिन्ता की जाए कि मुझे अध्ययन करना है, यद्यपि वह कोई प्रयास नहीं कर रहा, ऐसी स्थिति में चिन्ता व्यर्थ है। आसुरी प्रवृत्ति से युक्त मनुष्य ऐसी ही व्यर्थ चिन्ताएँ मन में लिए रहते हैं तथा उनकी इच्छाएँ नित्य-प्रति नवीन होती रहती हैं तथा वृद्धि करती रहती हैं, जिनका पूर्ण होना लगभग असम्भव होता है। अत: मृत्यु पश्चात् ही इन इच्छाओं की समाप्ति होती है।

इस प्रकार आसुरी गुणों से युक्त मनुष्यों को उनके जीवनपर्यन्त अर्थात् मरणकाल तक अपार चिन्ता होती रहती है।

16.12

आशापाशशतैर्बद्धाः(ख्), कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थम्, अन्यायेनार्थसञ्चयान्।।16.12।।

(वे) आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोध के परायण होकर पदार्थों का भोग करने के लिये अन्याय पूर्वक धन-संचय करने की चेष्टा करते रहते हैं।

विवेचन- वे सहस्त्र इच्छाओं के जाल में बँधे रहते हुए अनेकानेक मार्ग, चाहे वे अनुचित ही क्यों न हों, का अनुगमन करते हुए अपनी असाध्य कामनाओं की पूर्ति हेतु पूर्ण प्रयासरत रहते हैं एवं जब उनकी यह असीमित इच्छाएँ पूर्ण नहीं होती, वे क्रोधित हो जाते हैं।

जैसे एक कहावत है कि **घी यदि सीधी अङ्गुली से न निकले तब ऐसी स्थिति में अङ्गुली टेढ़ी कर लेनी चाहिए।**

कुछ व्यक्ति कार्य पूर्ण न होने पर, उसकी पूर्ति हेतु कोई भी मार्ग अपनाते हैं तथा काम एवं क्रोध में लीन होकर इन्द्रियतृप्ति हेतु अवैध ढङ्ग से धनसङ्ग्रह करते हैं, जिस प्रकार रावण ने किया था। हम सभी जानते हैं कि रावण स्वर्ण से निर्मित लङ्का का सम्राट था परन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। रावण प्रारम्भ से ही लङ्का का राजा नहीं था। स्वर्ण लङ्का के अधिपति धनकुबेर थे। जब रावण ने प्रथम बार लङ्का को देखा, तत्क्षण उसके मन में उसे प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हुई। वह उस सोने से निर्मित लङ्का को किसी भी प्रकार प्राप्त करने हेतु प्रयत्न करने लगा तथा कुछ समय पश्चात उसने स्वर्ण लङ्का पर अपना अधिकार सिद्ध कर लिया। अत: यह कथा सिद्ध करती है कि कुछ जीव अपने स्वार्थ की सिद्धि हेतु अन्याय करने से भी नहीं चूकते।

कुछ बालक बेहद हठी स्वभाव के होते हैं। वे अपनी इच्छा पूर्ण करवाने हेतु अनेकों स्वाङ्ग रचते हैं। हमें अपने इस स्वभाव को परिवर्तित करना चाहिए व इस प्रकार का भाव मन में कदापि नहीं लाना चाहिए।

16.13

इदमद्य मया लब्धम्, इमं(म्) प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे, भविष्यति पुनर्धनम्।।16.13।।

वे इस प्रकार के मनोरथ किया करते हैं कि - इतनी वस्तुएँ तो हमने आज प्राप्त कर लीं (और अब) इस मनोरथ को प्राप्त (पूरा) कर लेंगे। इतना धन तो हमारे पास है ही, इतना (धन) फिर भी हो जायगा।

विवेचन- आसुरी व्यक्ति सोचता है कि वर्तमान में मेरे पास इतना धन है तथा अपनी योजनाओं से मैं भविष्य में और अधिक धन प्राप्त करूँगा। जैसा हम चलचित्र में देखते हैं कि किसी व्यक्ति के घर पर उसके सोफो, दीवारों आदि में भी वह व्यक्ति धन सङ्ग्रह करके रखता है।

16.14

असौ मया हतः(श्) शत्रु:(र्), हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं(म्) भोगी, सिद्धोऽहं(म्) बलवान्सुखी।।16.14।।

वह शत्रु तो हमारे द्वारा मारा गया और (उन) दूसरे शत्रुओं को भी (हम) मार डालेंगे। हम ईश्वर (सर्व समर्थ) हैं। हम भोग भोगने वाले हैं।हम सिद्ध हैं, (हम) बड़े बलवान (और) सुखी हैं।

विवेचन- शत्रु कौन है? दुर्जन सदैव सज्जन को अपना शत्रु मानता है। जैसे- प्रह्लाद का वृतान्त तो हम सभी को ज्ञात ही है। प्रह्लाद का पिता हिरण्यकश्यपु अपने अहङ्कार में स्वयम् को ईश्वर मानने लगा था। वह श्रीनारायण को अपना शत्रु मानता था। वह सभी भगवत् भक्तों पर अत्याचार करता एवं उन्हें अपनी पूजा करने हेतु बाध्य करता, परन्तु उसे कहाँ पता था था कि उसके ही घर पर एक महान भगवत् भक्त प्रह्लाद जन्म लेगा! जब प्रह्लाद अपनी बाल्यावस्था में थे, तभी से उन्होंने श्रीनारायण की भक्ति प्रारम्भ कर दी, परन्तु जैसे ही इस विषय की जानकारी उनके पिता को हुई, तभी से उसने नाना प्रकार के कष्ट भक्तशिरोमणि प्रह्लाद को देने आरम्भ किए और एक समय तो ऐसा आया जब हिरण्यकश्यपु प्रह्लाद से उनके ईश्वर के अस्तित्व के विषय में प्रश्न पूछता हुआ एक स्तम्भ के पास जा खड़ा हुआ जहाँ उसने प्रह्लाद की भक्ति, उसकी आस्था की परीक्षा लेनी चाही। उसी समय अपने भक्त के आह्वान पर "ॐ नमो: नारायण", भक्तवत्सल श्रीहरि उस स्तम्भ को तोड़ते हुए नृसिंह के रूप में प्रकट हुए और अहङ्कार से पूर्ण उस आसुरी प्रवृत्ति से युक्त एक दानव का अन्त किया। यह भक्त और श्रीभगवान् के सम्बन्ध को प्रकट करता हुआ ऐसा उदाहरण है जो यह बताता है कि भक्त के हृदय से निकली एक पुकार श्रीभगवान् को भी अपने भक्त के समक्ष प्रकट होने हेतु बाध्य कर देती है।

इसी प्रकार रावण भी श्रीरामचन्द्र जी को स्वयं का शत्रु मानता था। आसुरी गुण प्रधान मनुष्य का मानना होता है कि "वह मेरा शत्रु है तथा मैंने उसे मार दिया है एवं मेरे अन्य शत्रु भी मृत्यु को प्राप्त होंगे। मैं समस्त वस्तुओं का स्वामी हूँ। मैं भोक्ता हूँ। मैं सिद्ध, शक्तिमान तथा सुखी हूँ।" हम सभी को यह भाव मन में रखना आवश्यक है कि आवश्यकता से अधिक किसी भी पदार्थ का सङ्ग्रह अनुचित है। हमारी पृथ्वी माता भी जो जल एवं अन्न उत्पन्न करती हैं, वह उनकी समस्त सन्तानों के कल्याण हेतु होता है।

16.15

आढ्योऽभिजनवानस्मि, कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य, इत्यज्ञानविमोहिताः।।16.15।।

हम धनवान हैं, बहुत से मनुष्य हमारे पास हैं, हमारे समान दूसरा कौन है? (हम) खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे (और) मौज करेंगे - इस तरह (वे) अज्ञान से मोहित रहते हैं।

विवेचन- मैं सर्वाधिक धनी व्यक्ति हूँ तथा मेरे निकट मेरे कुलीन सम्बन्धी हैं। जब किसी बालक का जन्म किसी धनाढ्य परिवार में होता है तब वह बालक समस्त सुख-सुविधाओं में पलते हुए स्वयं पर घमण्ड करने लगता है। वह विचार करता है कि "मेरे माता-पिता धनी हैं। मेरे अन्य रिश्तेदार भी सम्पन्न हैं, अत: मैं अन्य बच्चों से श्रेष्ठ हूँ।" जबकि उसकी यह श्रेष्ठता उसके स्वयं द्वारा अर्जित न हो कर, उसके परिवार द्वारा विरासत में मिली हुई होती है। अत: हमें अपनी योग्यताओं के विस्तार का सतत प्रयास करते रहना चाहिए तथा जब हम योग्य होंगे तब हम अपनी आजीविका हेतु स्वतः धनार्जन कर सकेंगे।

इसी प्रकार आसुरी प्रवृत्ति का व्यक्ति सोचता है कि "कोई अन्य मेरे सदृश शक्तिमान तथा सुखी नहीं है। मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा एवं इस प्रकार आनन्द मनाऊँगा।" ऐसे व्यक्ति अज्ञानवश मोहग्रस्त होते रहते हैं।

16.16

अनेकचित्तविभ्रान्ता, मोहजालसमावृताः।

प्रसक्ताः(ख्) कामभोगेषु, पतन्ति नरकेऽशुचौ।।16.16।।

(कामनाओं के कारण) तरह-तरह से भ्रमित चित्त वाले, मोह-जाल में अच्छी तरह से फँसे हुए (तथा) पदार्थों और भोगों में अत्यन्त आसक्त रहने वाले मनुष्य भयंकर नरकों में गिरते हैं।

विवेचन- कामनाओं में निरन्तर वृद्धि से तथा उनकी पूर्ति न होने से मन में चिन्ता का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इस प्रकार अनेक चिन्ताओं से उद्विग्न होकर तथा मोहजाल में फँसकर आसुरी प्रवृत्ति के मनुष्य इन्द्रियभोग में अत्यधिक आसक्त हो जाते हैं तथा नरक में गिरते हैं, अर्थात् उनका निरन्तर पतन होता जाता है।

यह उसी प्रकार है, जैसे कोई पक्षी किसी जाल में फँसकर शिकारी द्वारा पकड़ लिया जाता है। जाल में फँसा वह पक्षी कदापि ऊँची उड़ान नहीं भर सकता। उसी प्रकार भौतिक कामनाओं में फँसा मनुष्य निरन्तर अधोगति को प्राप्त होता है, परन्तु आसुरी प्रवृत्तियुक्त मनुष्य का यह कृत्य सर्वथा अनुचित है। अत: हमें सदैव पूर्ण इच्छाशक्ति के साथ भक्तिपूर्ण भाव से भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में तत्पर रहकर अपने समस्त कार्यों को उनको अर्पित करना चाहिए, तभी किसी जीवात्मा का उन्नयन सम्भव है।

16.17

आत्मसम्भाविताः(स्) स्तब्धा, धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते, दम्भेनाविधिपूर्वकम्।।16.17।।

अपने को सबसे अधिक पूज्य मानने वाले, अकड़ रखने वाले (तथा) धन और मान के मद में चूर रहने वाले वे मनुष्य दम्भ से अविधिपूर्वक नाममात्र के यज्ञों से यजन करते हैं।

विवेचन- अपने को श्रेष्ठ मानने वाले तथा सदैव घमण्ड करने वाले व्यक्ति कदापि स्वयं के निकट उनके अवगुणों को बताने वाले व्यक्तियों को रखना नहीं चाहते। वे सदैव प्रशंसकों को अपने निकट रखते हैं। जिसके परिणामस्वरूप उनके घमण्ड में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। अत: हमें अच्छा मनुष्य बनने हेतु, निन्दक अपने निकट रखने चाहिए ताकि वे हमारी कमियों को सुधार सकें।

कुछ व्यक्ति स्वयं की प्रशंसा कराने के उद्देश्य से दान आदि कर अपनी फोटो फेसबुक पर अपलोड करते हैं। सम्पत्ति तथा मिथ्या प्रतिष्ठा से मोहग्रस्त प्राणी किसी विधि-विधान का पालन न करते हुए कभी-कभी नाममात्र हेतु बहुत गर्व के साथ यज्ञ करते हैं।

श्रीभगवान् यहाँ स्वयं हेतु आत्मचिन्तन करने को कहते हैं। आत्मावलोकन की प्रक्रिया किसी भी मनुष्य हेतु उचित है, परन्तु हमें अपनों से बड़े, जैसे हमारे माता-पिता की निन्दा कदापि नहीं करनी चाहिए क्योंकि कभी-कभी वे हमें कुछ समझाने हेतु हमें डाँटते हैं जो सर्वथा उचित है। तभी तो आगे चलकर जीवन में हम एक अच्छे एवं सफल मनुष्य बनेगें।

श्रीभगवान् द्वारा वर्णित आसुरी गुण उस रोग के समान हैं, जो किसी मानव देह में पाए जाने पर चिकित्सक द्वारा उसका अन्वेषण किया जाता है, तत्पश्चात चिकित्सक द्वारा उसकी औषधि रोगी को दी जाती है। उसी प्रकार श्रीभगवान् भी भिन्न-भिन्न आसुरी गुणों का वर्णन करते हुए उसको मानव स्वभाव से पूर्णत: नष्ट करने हेतु उपाय भी दे रहे हैं।

16.18

अहङ्कारं(म्) बलं(न्) दर्पं(ङ्), कामं(ङ्) क्रोधं(ञ्) च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।16.18।।

(वे) अहंकार, हठ, घमण्ड, कामना और क्रोध का आश्रय लेने वाले मनुष्य अपने और दूसरों के शरीर में (रहने वाले) मुझ अन्तर्यामी के साथ द्वेष करते हैं (तथा) (मेरे और दूसरों के गुणों में) दोष दृष्टि रखते हैं।

विवेचन- मिथ्या अहङ्कार अर्थात् यह मानते हुए कि मैं धनाढ्य हूँ, गुणवान हूँ, सर्व श्रेष्ठ, शक्तिशाली हूँ, दर्प, काम तथा क्रोध से मोहित होकर आसुरी व्यक्ति स्वयं के शरीर में तथा अन्यों के शरीर में स्थित श्रीभगवान् से ईर्ष्या तथा वास्तविक धर्म की निन्दा करने लगते हैं।

श्रीभगवान् श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय पन्द्रह में यह स्पष्ट कहते हैं-

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।

श्रीभगवान् कहते हैं कि "मैं इस सृष्टि में विद्यमान समस्त जीवों में उपस्थित हूँ तथा उनके हृदय में निवास करता हूँ। अत: जो मनुष्य स्वयं से या अन्य मनुष्यों से घृणा करता है, वह वास्तव में मुझसे घृणा कर रहा है।" इससे स्पष्ट होता है, कि हमें स्वयं से तथा दूसरों से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। समस्त जीवों का आदर करना उचित होगा।

ईश्वरतत्त्व मानव देह में कहाँ स्थापित है? यह हमारे वस्त्रों सदृश देह का बाह्य आवरण निर्मित नहीं करता। वह भगवत् तत्त्व जीवों के हृदय में उपस्थित होता है। जिस प्रकार दर्पण में धूल उपस्थित होने से किसी वस्तु का स्पष्ट प्रतिबिम्ब नहीं बनता, उसी प्रकार मानव मन में उपस्थित कलुषित विचारों के कारण मन रूपी दर्पण में उस भगवत् तत्त्व के स्पष्ट दर्शन नहीं होते।

16.19

तानहं(न्) द्विषतः(ख्) क्रूरान् , संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभान्, आसुरीष्वेव योनिषु।।16.19।।

उन द्वेष करने वाले, क्रूर स्वभाव वाले (और) संसार में महानीच, अपवित्र मनुष्यों को मैं बार-बार आसुरी योनियों में ही गिराता ही रहता हूँ।

विवेचन- "जो लोग ईर्ष्यालु, क्रूर तथा नराधम हैं, अर्थात् स्वयं के भीतर, हृदय में उपस्थित भगवत् तत्त्व को तथा अन्य जीवों में स्थित भगवत् तत्त्व को जो मनुष्य नहीं जानते तथा कामनाओं के वशीभूत हो क्रोधी हो जाते हैं एवं अन्य जीवों के प्रति क्रूरता का प्रदर्शन करते हैं, उन्हें मैं निरन्तर विभिन्न आसुरी योनियों में, भवसागर में डालता रहता हूँ।"

ये हमारे पुण्य कर्म ही हैं कि हम मनुष्य योनि में जन्मे तथा हम सभी को श्रीमद्भगवद्गीता जी के पठन, पाठन तथा मनन, चिन्तन का सौभाग्य प्राप्त हुआ ताकि हम स्वयं की, इस सृष्टि में सही स्थिति का आंकलन कर सकें तथा स्वयं एवं ईश्वर के सम्बन्ध को समझ सकें। ऐसा अन्य योनियों में जन्में जीवों के साथ कदापि सम्भव नहीं है। अन्य योनियों में जन्में जीव मात्र अपने कर्म फलों का भोग करते हैं।

मनुष्य योनि में रहते हुए जीवात्मा अपनी इन्द्रियों पर संयम रखने का प्रयत्न करते हुए, अपने भीतर दैवीय गुणों की उत्पत्ति द्वारा स्वतः ही श्रीभगवान् को अपना प्रिय मित्र बना सकता है तथा अन्ततोगत्वा परमधाम की अपनी यात्रा को पूर्ण करते हुए इस संसार रूपी भवसागर से मुक्त हो सकता है।

हमारे गीता परिवार का ध्येय वाक्य (logo) है-

तस्मात् योगी भवार्जुन।।

अर्थात्

उपयोगी बनो, सहयोगी बनो अर्थात् योगी बनो। योगी बनने हेतु आपको हिमालय पर जाने की आवश्यकता नहीं है।है।

मनुष्य रहते हुए हम अपने उत्थान का कार्य सम्पादित नहीं करते अर्थात् योगी बनने तथा ऊर्ध्वगति हेतु सतत प्रयासरत नहीं होते तो हम पतित होकर नीचे की योनियों में गिरते जाते हैं।

16.20

आसुरीं(यँ) योनिमापन्ना, मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय, ततो यान्त्यधमां(ङ्) गतिम्।।16.20।।

हे कुन्तीनन्दन ! (वे) मूढ मनुष्य मुझे प्राप्त न करके ही जन्म-जन्मान्तर में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं, (फिर) उससे भी अधिक अधम गति में अर्थात् भयंकर नरकों में चले जाते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, " हे कुन्तीपुत्र! ऐसे व्यक्ति आसुरी योनि में निरन्तर जन्म ग्रहण करते हुए कदापि मुझ तक नहीं पहुँच पाते। वे धीरे-धीरे अत्यन्त अधम गति को प्राप्त होते हैं।"

16.21

त्रिविधं(न्) नरकस्येदं(न्), द्वारं(न्) नाशनमात्मनः।
कामः(ख्) क्रोधस्तथा लोभः(स्), तस्मादेतत्त्रयं(न्) त्यजेत्।।16.21।।

काम, क्रोध और लोभ - ये तीन प्रकार के नरक के दरवाजे जीवात्मा का पतन करने वाले हैं, इसलिये इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।

विवेचन- इस नरक के तीन द्वार हैं-

- **काम** अर्थात् असंयमित कामनाएँ।
- **क्रोध**- कामना पूर्ति न होने पर क्रोधित हो जाना।
- **लोभ**- अन्य जीवों की इच्छाओं को महत्त्व न देते हुए, किसी भी प्रकार अपनी इच्छाओं की पूर्ति का उद्देश्य।

जैसे आपके निकट अनेक कलम होने पर भी और अधिक कलमों को प्राप्त करने की इच्छा, अलमारी में अनगिनत वस्त्र होने पर माँ द्वारा किसी परिजन के घर जाने को कहे जाने पर सदैव यह कहना कि मेरे पास वस्त्र नहीं हैं।

प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि इसे त्याग दे, क्योंकि इनसे आत्मा का पतन होता है।

16.22

एतैर्विमुक्तः(ख्) कौन्तेय, तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः(श्) श्रेयस् , ततो याति परां(ङ्) गतिम्।।16.22।।

हे कुन्तीनन्दन ! इन नरक के तीनों दरवाजों से रहित हुआ (जो) मनुष्य अपने कल्याण का आचरण करता है, (वह) उससे परम गति को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "हे कुन्तीपुत्र! जो व्यक्ति इन तीनों नरक-द्वारों से बच पाता है, वह आत्म-साक्षात्कार हेतु कल्याणकारी कार्य करता है तथा इस प्रकार क्रमशः परम गति को प्राप्त होता है। जो जीव आसुरी मार्ग त्याग देता है, उसका पतन नहीं होता। वह मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर आगे बढ़ता जाता है।"

16.23

यः(श्) शास्त्रविधिमुत्सृज्य, वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति , न सुखं(न्) न परां(ङ्) गतिम् ।।16.23।।

जो मनुष्य शास्त्रविधि को छोड़कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरण की शुद्धि) को, न सुख (शान्ति) को (और) न परमगति को (ही) प्राप्त होता है।

विवेचन- हमें ऐसे क्या कार्य करने चाहियें जिनके कारण हम योगी बन सकें? अपने जीवन में परिवर्तन लाते हुए, अच्छे मनुष्य बन सकें।" इन समस्त विषयों को विस्तारित रूप से हम शास्त्रों द्वारा समझ सकते हैं। वेद सहित श्रीमद्भगवद्गीता भी हमें मोक्ष के उस प्रकाशवान मार्ग की ओर अग्रसर रहने हेतु प्रेरित करती हैं तथा जो मनुष्य शास्त्रों के आदेशों की अवहेलना करता है तथा मनमाने ढङ्ग से कार्य करता है, उसे न तो सिद्धि, न सुख और न ही परमगति की प्राप्ति होती है।

16.24

तस्माच्छास्त्रं(म्) प्रमाणं(न्) ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं(ङ्), कर्म कर्तुमिहार्हसि।।16.24।।

अतः तेरे लिये कर्तव्य-अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र (ही) प्रमाण है - (ऐसा) जानकर (तू) इस लोक में शास्त्रविधि से नियत कर्तव्य-कर्म करने योग्य है अर्थात् तुझे शास्त्रविधि के अनुसार कर्तव्य-कर्म करने चाहिये।

विवेचन- अतएव मनुष्य को यह जानना चाहिए कि शास्त्रों के विधान के अनुसार क्या कर्त्तव्य हैं तथा क्या अकर्त्तव्य हैं? उसे ऐसे विधि-विधानों को जानकर कर्म करना चाहिए जिससे वह क्रमशः ऊपर उठ सके। जब हम शास्त्रों का अध्ययन करते हुए, उनके द्वारा स्थापित मार्ग की ओर अग्रसर होते हैं, तब हम अपने जीवन में उन्नति सहित स्वयं हेतु भगवत्प्राप्ति मार्ग प्रशस्त करते हैं और तत्क्षण श्रीभगवान् हमारे परम मित्र बन जाते हैं।

इसी के साथ विवेचन सत्र का समापन हुआ तथा प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- शिवम भैया
प्रश्न- इस अध्याय के बाद कौन सा अध्याय पढ़ेंगे?
उत्तर- इस अध्याय के बाद चौदहवाँ अध्याय पढ़ेंगे।

प्रश्न- परीक्षा कैसे दे सकते हैं?
उत्तर- इसके विषय में आप अपनी प्रशिक्षिका (trainer) दीदी से भी पूछ सकते हैं। हमारी वेबसाइट **exam.learngeeta.com** है। आप इसके द्वारा रजिस्ट्रेशन कर सकते हैं। इसके लिए यदि आपको बारहवाँ (12th), पन्द्रहवाँ (15th) तथा सोलहवाँ (16th) अध्याय कण्ठस्थ (learn) है तो आप परीक्षा दे सकते हैं। दो प्रकार की परीक्षाएँ होती हैं। एक **गीता जिज्ञासु** परीक्षा होती है जिसमें आपको किसी श्लोक का प्रथम चरण बता कर पूरा श्लोक तथा उसके आगे वाला श्लोक पूछते हैं। दूसरी परीक्षा इससे उच्च स्तर (advance level) की होती है। इसका नाम **गीता श्लोकाङ्क** परीक्षा है। उस में श्लोक की सङ्ख्या (number) बताते हैं और आपको वह श्लोक पढ़ना होता है। यदि आपको सङ्ख्या के साथ श्लोक याद हैं तो आप वह परीक्षा भी दे सकते हैं।

प्रश्नकर्ता- दिव्या दीदी
प्रश्न- आपने पाँच तत्त्वों के विषय में बताया था। वह समझ में नहीं आया था। फिर से समझना चाहती हूँ।
उत्तर- हमारा शरीर (body) पाँच तत्त्वों से मिलकर बना है। संसार में जो भी हम देखते हैं, जैसे सूर्य, चन्द्र या और कुछ, वे सभी इन पाँच तत्त्वों से मिलकर ही बने हैं। जैसे हम रसायन विज्ञान (chemistry) का अध्ययन करते हैं। उसमें अलग-अलग तत्त्व (केमिकल) मिलाकर अलग-अलग पदार्थ बनाते हैं, उसी प्रकार से इन पाँच तत्त्वों से संसार की अलग-अलग वस्तुएँ या प्राणी बनते हैं।

प्रश्नकर्ता- जीविका दीदी
प्रश्न- रावण शिवजी की पूजा करता था, फिर भी सब ऐसे क्यों कहते हैं कि वह आसुरी प्रवृत्ति का था?
उत्तर- भक्त श्रीभगवान् से प्रेम करते हैं। वे श्रीभगवान् से प्रेम होने के कारण भक्ति करते हैं। हम अपने माता-पिता से भी कुछ माँगते हैं, परन्तु हम अपने माता-पिता से केवल इसलिए प्रेम नहीं करते कि हमें हर समय कुछ चाहिए। हम उनसे हमेशा प्रेम करते हैं। रावण जो भी करता था, उसके पीछे उसका कोई उद्देश्य या माँग (demand) रहती थी। रावण के अन्दर श्रीभगवान् से प्रेम की भावना नहीं थी। रावण हमेशा श्रीभगवान् की उपासना उनसे कुछ प्राप्त करने के लिए करता था। ईश्वर से माँगना बुरी बात नहीं है क्योंकि वे भी हमारे माता-पिता हैं, परन्तु हर समय माँगते रहना अच्छी बात नहीं है। इसलिए रावण को भक्त नहीं कहते बल्कि उपासक कहते हैं। उपासना के बदले में उसे कुछ चाहिए होता था।

प्रश्नकर्ता- देवम भैया
प्रश्न- क्या भूत होते हैं?
उत्तर- यदि संसार में गुण होते हैं तो दोष भी होते हैं, अच्छाई है तो बुराई भी होती है। अगर देव हैं तो राक्षस भी हैं। उसी प्रकार अच्छे व्यक्ति हैं तो बुरे व्यक्ति भी हैं। जैसे देव हैं, यक्ष हैं, अप्सरा आदि हैं, उसी प्रकार भूत भी एक प्रकार की योनि होती है। ये फिल्मों में जैसे दिखाये जाते हैं, वैसे डराने वाले नहीं होते हैं, इसमें डरने वाली कोई बात नहीं है। हम आगे इनके विषय में पढ़ेंगे। श्रीभगवान् ने बता दिया कि अभय बनो तो हम किसी से बिल्कुल नहीं डरेंगे।

प्रश्नकर्ता- गीत सोनी दीदी
प्रश्न- जब हमारी मृत्यु होती है तो हमें जला क्यों देते हैं?
उत्तर- हमारा शरीर (body) भौतिक शरीर (physical body) है और उसके अन्दर हमारी आत्मा होती है जो सूक्ष्म तत्त्व होती है। वह हमारे शरीर से जुड़ी (attach) होती है। हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि मृत्यु के कुछ क्षण बाद तक वह आत्मा या आस-पास की कोई आत्मा उस शरीर में प्रवेश कर सकती है। हमारे अनेक योगियों ने इस प्रकार का प्रयोग किया भी है। इसे परकाया प्रवेश कहते हैं, जिसका अर्थ होता है किसी की मृत्यु होने के बाद उसके शरीर में प्रवेश कर लेना, इसलिए मृत्यु के बाद शरीर को जलाने का विधान है।द

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यूँ) योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'देवासुरसम्पदविभाग योग' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||